हवनीय द्रव्य (शाकल्य),आज्य और उसका परिमाण निर्णय

शाकल्य की परिभाषा

तिल अक्षत यव शर्करा और घृत के प्रमाणानुसार मिश्रण को शाकल्य कहते हैं-

तिलाक्षतयवाश्चापि शर्कराऽऽज्यं तथैव च।

एतच्छाकल्यमित्याहुः पूर्वाचार्या महर्षयः॥

व्रीहीन् यवान्वा हविषि' (कात्या० श्री० सू० १।६।१) तथा **'होमं समारभेत् सपिर्यवव्रीहितिलादिना (अनुष्ठानप्रकाश)** इत्यादि श्रुति-स्मृति-प्रमाणोंसे तिल, यव, चावल और घृतकी ही हविर्द्रव्य संज्ञा सिद्ध होती है। हवनादि में विशेषतया उपर्युक्त हविर्द्रव्यका ही अधिक उपयोग होता है।

हवनार्थ हवनीय द्रव्यकी आहुति देनेके विषय में शास्त्रज्ञोंने एक नियमित व्यवस्था कर दी है। अतः याज्ञिकोंको उचित है कि जिस द्रव्यके विषयमें जो परिमाण बतलाया गया है तदनुकूल

द्रव्य-योजना कर हविर्द्रव्यका व्यवहार करना चाहिये । शास्त्रानुमोदित मार्गके अनुकूल कार्य करनेसे ही उचित फल प्राप्त होता है, अन्यथा अनेक प्रकारकी हानि भोगनी पड़ती है। हविर्द्रव्यके परिमाणका विवरण शास्त्रोंमें इस प्रकार मिलता है-

तिलार्ध तण्डुला देयास्तण्डुलाध यवास्तथा।

यवार्ध शर्कराः प्रोक्ताः सर्वार्द्ध च घृतं स्मृतम् ।।

(आनन्दरामायण)

अर्थात् 'तिलका आधा चावल और चावलका आधा जो देना चाहिये। जौसे आधा शर्करा कही गई है और सबसे आधा घृत कहा गया है।

तिलार्धं तण्डुलाः प्रोक्तास्तण्डुलार्धं यवास्तथा।

तण्डुलैस्त्रिगुणं चाज्यं यथेष्टं शर्करा मता॥ ॥

अर्थात् 'तिलके आधे चावल कहे गये हैं, चावलोंके आधे जौ और चावलोंसे तिगुना घृत कहा गया है। शर्करा जितनी इच्छा हो उतनी कही गई है।

तिलास्तु द्विगुणाः प्रोक्ता यवेभ्यश्चैव सर्वदा ।

अन्ये सौगन्धिकाः स्निग्धा गुग्गुलादि यवः समाः।

'यवकी अपेक्षा तिलको द्विगुणित रखना चाहिये और अन्य सुगन्धित गुग्गुल इत्यादि द्रव्योंको यवके बराबर ही रखना चाहिये ।'

तिलार्ध तु यवाः प्रोक्ता यवार्धं तण्डुलाः स्मृताः।

तण्डुलार्ध शर्कराः प्रोक्ता अाज्यभागचतुष्टयम् ।।

'तिल का आधा यव, यवका आधा चावल, चावलकी आधी चीनी और चतुर्गुण घृतसे शाकल्यका निर्माण उत्तम कहा गया है।'

प्रमाण विरुद्ध शाकल्य का फल

तिलकी अधिकतासे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और यवकी अधिकतासे दरिद्रताकी प्राप्ति होती है। घृतके आधिक्यसे मुक्ति और शर्कराके आधिक्यसे सर्वसिद्धि होती है-

तिलाधिक्ये भवल्लक्ष्मीर्यवाधिक्ये दरिद्रता।

घृताधिक्ये भवेन्मुक्तिः सर्वसिद्धिस्तु शर्करा ॥

'तिलसे यवके अधिक होने पर आयुका नाश होता है, तिलके

बराबर यवके रहने पर धनका नाश होता है, अतः सर्वदा तिलकी अधिकता ही उचित है । इससे सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धि होती है।''यवाधिक्ये प्रजानाशः' यह भी किसी आचार्यका मत है।

आयुःक्षयं यवाधिक्यं यवसाम्यं धनक्षयम् ।

सर्वकामसमृद्ध्यर्थं तिलाधिक्यं सदैव हि ॥

(त्रिकारिकायाम्)

'घृतसे सने काले तिल, कुछ यवोंसे युक्त हवनीय कहे गये हैं-

'तिलाः कृष्णा घृताभ्यक्ताः किञ्चिद्यवसमन्विताः ।' (शान्तिरत्न)

'अक्षत (चावल) अथवा तिल या जौ अथवा समिधोंका उन सबको घी में बोर कर 'नमः शम्भवाय' इस मन्त्रसे आहुति देनी चाहिये।'

अक्षतावा तिलान्वापि यवान्वा समिधोऽपि वा।

शम्भवायेति जुहुयात्सर्वास्तानाज्यसिक्तकान् ॥

(बृहत्पाराशरः)

इस प्रकार उपर्युक्त मत-मतान्तरोंकी आलोचनासे 'बहुवचनं प्रमाणम्' (अनेक वचन जिस विषयको कहें वही प्रमाणभूत है इस न्यायसे यही निष्कर्ष निकलता है कि तिलकी अधिकतासे

ही यजमानकी सर्वविध सिद्धियाँ होती हैं ।

कहीं-कहीं ग्रन्थ-विशेषमें **'यवार्द्धं तण्डुलाः प्रोक्ताः तण्डुलार्द्धे तथा तिला:'** यह वचन भी मिलता है । यद्यपि यह वचन यवाधिक्य का ही विधान सिद्ध करता है, किन्तु सहायक प्रामाणिक वचनान्तरोंकी न्यूनताके कारण यवाधिक्य सर्वथा उपेक्षणीय और त्याज्य है।

हवनीय द्रव्यका एकादश विभाग-

पञ्चभागास्तिलाः प्रोक्तास्त्रिभागास्तण्डुलास्तथा ।

द्वौ भागौ च यवस्योक्तौ भागैकं गुग्गुलादिकम् ॥

रुद्रभागैः कृते होमे जायते सिद्धिरुत्तमा ।

'पाँच हिस्सा तिल, तीन हिस्सा चावल, दो हिस्सा जौ और एक हिस्से में गुग्गुल इत्यादि सुगन्धित द्रव्य-इस प्रकार एकादश भागोंसे संयुक्त हवनसामग्रीसे जो हवन किया जाता है, वह सर्वप्रकारको उत्तम सिद्धिको देता है।'

आज्य शब्दका अर्थ तथा आज्य निर्णय

(आ+अञ्ज्+क्यप्+अम् = आज्यम्) आज्यम्= पिघलाया हुआ घी।

घृत हो अथवा तेल हो, दूध हो या दही हो अथवा यावक (आधे भुने या पके हुए जौ आदि) हो संस्कार-सम्बन्ध होनेसे इन सबको आज्य शब्दसे कहा जाता है-

घृतं वा यदि वा तैलं पयो दधि च यावकम् ।

संस्कारयोगादेतेषु आज्यशब्दोऽभिधीयते ॥

(यज्ञपार्श्वपरिशिष्ट)

जमे हुएको घी और पिघले हुएको आज्य कहते हैं-

सर्पिर्विलीनमाज्यं स्याद् घनीभूतं घृतं भवेत्।

घृत, तिलका तेल, दूध, दही, तथा अन्य विहित धान्योंके तेलको, जब हवनके लिए अग्निपर संस्कृतकर दिया जाता है, तो इन सभीको आज्य कहा जाता है-

घृतं वा यदि वा तैलं पयो दधि च यावकम्।

सँस्कारयोगादेतेष्वाज्यशब्दो विधीयते।।

(यज्ञपार्श्वपरिशिष्टे)

उपर्युक्त सभी घृत व तेल हवनके लिए जब अग्नि पर संस्कृत कर दिए जाते हैं तो उन सभी का नाम आज्य हो जाता है।

नित्य हवन में विहित द्रव्यके अभाव में प्रतिनिधि द्रव्य नित्य हवन में विहित द्रव्य के अभावमें प्रतिनिधि द्रव्यसे भी कार्य हो सकता है । महर्षि कात्यायन कहते हैं--

नित्ये सामान्यतः प्रतिनिधिः स्यात् ।' (का० श्री० सू० १।४।२)

'हवनके लिये सबसे अच्छा गोघृत होता है, उसके अभाव में बकरीका घृत, उसके अभाव में शुद्ध तेलसे हवन करना चाहिये । तेलके अभावमें जर्तिल का तेल प्रयोग करना चाहिए। जर्तिल जंगल में उत्पन्न होनेवाले तिल को कहते हैं-

जर्तिलास्तु तिलाः प्रोक्ता कृष्णवर्णा वनोद्भवाः ।

जर्तिलाश्चैव ते ज्ञेया अकृष्टोत्पादिताच ये॥ (सत्यव्रतः)

'जर्तिल: कथ्यते सद्भिररण्यप्रभवस्तिला।'

आरण्यकास्तिलास्तत्प्रभवं तिलम्

पुनः जर्तिलके अभावमें तीसीका तेल, उसके अभावमें कुसुम्भ, उसके अभावमें पीली सरसों, उसके अभावमें सरसोंका तेल, उसके अभाव में गोंद ग्राह्य है। इनमें जो-जो वस्तु पहले वाली न मिले, उसके स्थानमें उसके आगेकी लिखी हुई वस्तुसे काम

चलावे । वृक्षोंके तेल भी उपलब्ध न हो तो जौ, धान तथा समा आदि की भूसीसे होने वाले तेलको भी हवनमें प्रयुक्त कर सकते हैं।-'

घृतार्थे गोघृतं ग्राह्यं तदभावे तु मादिषम् ।

आज वा तदभावे तु साक्षातैलमपीष्यते ॥

तैलाभावे ग्रहीतव्यं तैलंजरर्तिलसम्भवम् ।

तदभावेऽतसीस्नेहः कौसुम्भः सर्षपोद्भवः ॥(बौधायन:)

वृक्षस्नेहोऽथवा ग्राहयः पूर्वालाभे परः परः ।

तभावे यवव्रीहिश्यामाकान्यतमो वः ॥ (मण्डन:)

समस्त प्रकारके घृतके हवन में गौका घृत ही उचित है । गौके घृतके अभाव में भैसका अथवा बकरी एवं भेंडका घृत, उसके अभावमें तेल, उसके अभावमें जंगल में होनेवाले तिलका तेल, उसके अभावमें कुसुम्भ और उसके अभावमें सरसोंका ग्रहण उचित है।-'

आज्यहोमेषु सर्वेषु गव्यमेव भवेद् घृतम् ।

तदलाभे तु माहिष्यं आजमाविकमेव वा ।

तदभावे तु तैलं स्यात्तदभावे तु जातिलम् ।

तदभावे तु कौसुम्भं तदभावे तु सार्षपम् ।।

'यदि गौके घतका अभाव हो तो त्रमसे बकरी या भैंस आदिका घृत विहित है । यदि उसका भी अभाव हो तो उसके बदले क्रमसे गौ आदिका दुग्ध कहा गया है। यदि दही भी न मिले तो तेल भी लिया जा सकता है-

'गव्याज्याभावतश्छागामहिष्यादेघृत क्रमात् ।

तदभावे गवादीनां क्रमात् क्षीरं विधीयते ॥

तदभावे दधि दधि ग्राह्यं अलाभे तैलमपीष्यते ।

'दधिके अभावमें दुग्धसे, शहदके अभाव में गुड़से, घृतके अभावमें दुग्ध अथवा दधिसे काम चलावे-'

दध्यलाभे पयो ग्राह्य मध्वलाभे तथा गुडः

घृतप्रतिनिधि कुर्यात् पयो वा दधि वा नृप ।

(विष्णुधर्मोत्तरपुराण)

परंतु पूर्व पूर्व के न मिलने पर ही पर वाला विकल्प ग्राह्य होता है।

घृतके उत्तम, मध्यम और अधमका निर्देश

उत्तम गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषीभवम् ।

अधर्मं छागलीजातं तस्माद् गव्यं प्रशस्यते ॥

(पिङ्गलामत)

'गोघृत सर्वोत्तम, भैसका घृत मध्यम और बकरीका घृत अधम कहा गया है , अतः इनमें गोघृत ही प्रशस्त है।'

घृतादिके अभाव में तिल की ग्राह्यता

यत्र यत्र च सङ्कीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः ।

तत्र तत्र तिलोमो गायच्या वाचनं तथा ॥

(याज्ञ० स्मृ०, प्राय० ३०६)

'जहाँ-जहाँ घृतके अभावके कारण द्विज अपनी आत्मामें संकीर्णता (संकोच) का अनुभव करे, वहाँ-वहाँ वह तिलसे होम करे और गायत्रीका जप करे।'

तिलका महत्व

तिलान् ददाति यः प्रातस्तिलान् स्पृशति खादति ।

तिलस्नायी तिलाञ्जुह्वन् सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥

(यमस्मृति)

'जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल तिलका दान करता है, तिलका स्पर्श करता है, तिलको खाता है, तिलसे स्नान करता है और

तिलसे हवन करता है, वह सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है।'

तिलाः पुण्याः पवित्राश्च सर्वपापहराः स्मृताः ।

शुक्लाश्चैव तथा कृष्णा विष्णुगात्रसमुद्भवाः ॥

(स्मृतिकौस्तुभ)

'तिल अत्यन्त पवित्र और पुण्यप्रद है तथा वह समस्त प्रकारके पापोंको दूर करनेवाला है । वह तिल सफेद और काला दो प्रकारका भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुआ है।'

हवन में घृताक्त तिलका उपयोग करणीय

'घृताक्तं जुहुयाद्धविः।

'घृताक्त हविसे हवन करना चाहिये।'

हवनीय द्रव्य निर्देश

त्रिमधुर अथवा त्रिमधु (मिश्रित मिश्री, शहद और घृत)से, मिश्रित खीरसे, दाख, केलेके फल आदिसे, विजौरा नीबू (चकोतरा) से, ईखके टुकड़ेसे, नारियल की गिरीसे युक्त तिलोंसे,

जातीफलसे, आमके फलसे, अन्यान्य और भी मधुर मीठी वस्तुओंसे हवन करना चाहिये-

पायसान्नैस्त्रिमध्वाक्तैद्राक्षारम्भाफलादिभिः ।

मातुलुङ्गैरितुलण्डैनारिकेलयुतैरितलैः॥

जातीफलैराम्रफलैरन्यैर्भधुरवस्तुभिः ।

हवनीय अन्न अथवा धान्य निर्णय

विद्वानोंको अन्नकी ये तीन संज्ञाएँ समझनी चाहिएँ-कृत, कृताकृत और अकृत । भात, सत्तू आदि कृत है, चावल आदि कृताकृत है और धान आदि अकृत है यानी जो अन्न सब संस्कार हो जानेपर सिद्ध हो चुका हो वह कृत है, जिसके कुछ संस्कार हो चुके और कुछ अवशिष्ट हों वह कृताकृत है तथा जिसके सब संस्कार शेष हों वह अकृत है-

कृतमोदनसक्त्वादि तण्डुलादि कृताकृतम् ।

बीह्यादि चाकृतं प्रोक्तमिति हव्यं त्रिधा बुधैः॥

(कात्यायनः)

'सत्तू आदि सिद्ध अन्न, तण्डुल (चावल) आदि सिद्ध और असिद्ध दोनों प्रकारके और व्रीहि आदि केवल असिद्ध यों विद्वानोंने होममें ये तीन प्रकारके हविर्द्रव्य कहे हैं।'

कामनाभेदसे हवनीय पदार्थका विचार

दूर्वा भव्याश्च समिधो गोघृतेन समन्विताः।

होतव्याः शान्तिके देवि शान्तियेन भवेत् स्फुटम् ।।

समिधो राजवृक्षोत्था होतव्याः स्तम्भकर्माण ।

मेषीघृतेन संयुक्ताः स्तम्भसिद्धिर्भवेद् ध्रुवम् ॥

खदिरा मारणे प्रोक्ताः कटुतैलेन संयुताः ।

होतव्याः साधकेन्द्रण मारणं येन सिति ॥

उच्चाटने चूतजाता कटुतैलेन संयुताः ।

उच्चाटयेन्महीं सर्वा सशैलवनकाननाम् ।

वश्ये चैव सदा होमः कुसमैर्दाडिमोद्भवः ।

अजाघृतेन देवेशि वशयेत् सचराचरम् ।

विद्वेषे चैव होतव्या उन्मत्तसमिधो मताः ।

अतसीतैलसंयुक्ता विद्वेषणकर परम् ॥

(मोहशूरोत्तर आगम)

'हे देवि ! शान्तिक कर्ममें गोघृतसे तर दूर्वोद्भव (दूबकी) समिधाओंका हवन करना चाहिये जिससे निश्चय (निस्सन्देह) शान्ति होती है। यदि किसीका स्तम्भन करना हो तो राजवृक्ष (धन वहेड़ा) की समिधाओंका भेड़के घीसे तरकर हवन करना चाहिये । निश्चय ही स्तम्भन कर्ममें सिद्धि होती है। मारण कर्ममें खैरकी समिधाएँ कही गई हैं। कडुवे तेल में भिगो कर उनका श्रेष्ठ साधक पुरुषको हवन करना चाहिये, जिससे मारणकी सिद्धि होती है। उच्चाटन कर्ममें कडुवे तेलसे संयुक्त आमकी समिधाएँ कही गई हैं, उनसे हवन करता हुआ साधक पुरुष और तो और पर्वत, वन, महावन सहित सारी पृथ्वीका उच्चाटन कर देता है। हे देवेशि ! वश्य कर्ममें दाडिमके फूलोंसे बकरीके घृतके साथ सदा होम करना चाहिये, जिससे साधक चराचर जगतको वशमें कर लेता है। विद्वेष कर्म में धत्तूर वृक्षकी समिधाओंका हवन कहा गया है, उन्हें अलसी (तीसी) के तेल में भिगाकर हवन करनेसे परम विद्वेषण होता है।

अन्यत्र भी लिखा है-

पुत्रार्थे शालिबीजेन धनार्थे बिल्वपत्रकैः ।

आयुष्कामस्तु दूर्वाभिः पुष्टिकामस्तु वेतसैः ।।

कन्याकामस्तु लाजाभिः पशुकामो घृतेन तु ।

विद्याकामस्तु पालाशैर्दशांशेन तु होमयेत् ॥

धान्यकामो यवैश्चैव गुग्गुलेन रिपुतये ।

(तिलैरारोग्यकामस्तु व्रीहिभिः सुखमश्नुते ॥

'**पुत्र-प्राप्ति के लिये साठीके बीजोंसे, धन** प्राप्तिके लिये बिल्वके पत्रोंसे, आयुकी कामनावाला पुरुष दुर्वासे, पुष्टि चाहनेवाला पुरुष वेंतकी समिधाओंसे, कन्या चाहनेवाला पुरुष धानके लावोंसे, पशु चाहनेवाला पुरुष घृतसे और विद्या चाहनेवाला पुरुष पलाशकी समिधाओंसे दशांश होम करे। धान्य (अन्न) चाहनेवाला पुरुष यवोंसे, शत्रुक्षयके निमित्त गुग्गुलसे तथा आरोग्य चाहनेवाला पुरुष तिलोंसे हवन करे। व्रीहियों (धानों) से हवन करने वाला पुरुष सुख प्राप्त करता है।

हवनीय पदार्थ के अभावमें विचार

यथोक्तवस्त्वसम्पत्तो ग्राह्यं तदनुकारि यत् ।

यवानामिव गोधूमा ब्रोहोणामिव शालयः ।।

(ब्रह्मपुराण)

'हवन के लिये जो सामग्री कही गई है, यदि उसका अभाव हो, तो तदनुकूल वस्तु लेना चाहिये । जैसे-यद की जगह गेहूँ और धानकी जगह साठी लेना चाहिये।'

कृमि-कीटादिसे युक्त हवनीय पदार्थका त्याग उचित है

कृमिकीटपतङ्गादि द्रव्येषु पतितं यदि ।

तद् द्रव्यं वर्जयेन्नित्यं देवयागेषु सर्वतः ।।

तदैवत्यं शतं हुत्वा चान्यद् द्रव्यं समाहरेत् ।

'यज्ञादिमें प्रयुक्त होनेवाले हवनीय पदार्थों में यदि कीड़े-मकोड़े, पतङ्ग आदि गिर जायँ, तो उस हवनीय सामग्रीका त्याग कर देना चाहिये और उस यज्ञके प्रधान देवताके निमित्त विशेष रूपसे सौ बार घृतकी आहुति देकर हवनार्थ दूसरे पवित्र द्रव्यको लाना चाहिये।

दूषित हवनीयपदार्थसे यजमान की हानि

'यत्कोटावपन्नेन जुहुयादप्रजा अपशुर्यजमानः स्यात् ।'

(कपिष्ठल शा० ४८।१६)

'यज्ञाग्निमें कूड़ा, कंकर (पत्थर आदि) कीड़ी आदि जन्तुओंसे युक्त हवनीय द्रव्यके द्वारा हवन करनेसे यजमान पुत्रादि, पशु और धनादिसे रहित हो जाता है।'

हविष्य द्रव चरु का स्वरूप

' होता अथवा हवन कर्ता जिससे होम करता है वह चरु कहलाता है अर्थात् ओदन-विशेष एक प्रकारके भात को चरु कहते हैं-

'चरति हामादिकमस्मादसौ वरुः' ओदनविशेषः ।

'चरु देवताओंका अन्न है। ओदन (भात) को चरु कहते हैं'-

'चरुवे देवानामन्नमोदनो हि चरुः ।'

'जिसकी उष्णता (गर्मी) निकल न गई हो अर्थात् गर्मागर्म, जो खूब पका हो. जला न हो और कड़ा न हो वह चरु है । उसे इस

तरह पकाना चाहिये जिससे वह न तो बहुत गीला रहे और न उसका गीलापन बिलकुल चला जाय'-

अनिर्गतोष्मा सुस्विन्नो ह्यदग्धोऽकठिनश्चरुः ।

न चातिशिथिलः पाच्यो न च वीतरसो भवेत् ॥

(सारसंग्रह)

पकाया हुआ हो, खूब उबला हुआ अर्थात् गला हुआ हो, जला हुआ न हो, कड़ा न हो, नामके अनुरूप चरु (ओदन) शुभ माना गया है। उसे (चरुको) इस प्रकार पकाना चाहिये जिससे वह न तो बहुत गीला रहे और न बिना रसका (सूखा) हो -

अन्वर्थः श्रपितः स्विन्नो हदग्धोऽकठिनः शुभः ।

न चातिशिथिलः पाच्यो न चरुश्चारसस्तथा॥

हविष्य पदार्थ कौन कौन से हैं

'चरुमैक्षसक्तुकणयावकपयोदधिघृतमूलफलोदकानि हवींष्युत्तरोत्तरं प्रशस्तानि ।' (गौतमस्मृति २८)

'चरु (भात), भिक्षाका अन्न, भुने हुए जौका सत्तू कण, यावक

(आधे भुने हुए जौ), गोदुग्ध, दधि, घृत, मूल, फल और जल ये खानेके योग्य हविष्यान्न हैं । इनमें आगे-आगेकी वस्तु श्रेष्ठ है।'

हविष्यान्नं तिला माषा नोवारा ब्रीहयो यवाः ।

इक्षवः शालयो मुद्गाः पयो दधि घृतं मधु ॥

हविष्येषु यवा सुख्यास्तदनु बोहयः स्मृताः ।

व्रीहोणामप्यलाभे तु दाना वा पयसाऽपि वा ॥

यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकल्पतः।

यवानामिव गोधूमा ब्रीहीणामिव शालयः ॥

अभावे व्रीहियवयोदना वा पयसापि वा ॥

(रेणुकारिका)

'तिल, उरद, तिन्नी, भदौंह, धान, जौ, ईख, वासमती, मूंग, दूध, दही, घी और शहद ये हविष्यान्न हैं। हविष्य अन्नोंमें जौ मुख्य है, उसके बाद धानों का स्थान कहा है। यदि धान भी न मिल सकें तो दूधसे अथवा दहीसे काम लेना चाहिये। जहाँ जो वस्तु कही कई है वह यदि न मिल सके तो उसके स्थानमें उसके अनुकल्पका (उससे मिलते जुलते गुणवाली वस्तुका) ग्रहण करना उचित है । जैसे जौके स्थानमें गेहूँ और धानोंके स्थान में वासमती धान। इनके अभावमें धान, जौ, दधि अथवा दुग्धका

ग्रहण उचित है।'

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः ।

माषकोद्रवगौरादि सर्वालाभे विवर्जयेत् ॥

(कात्यायनस्मृति ६ । १०)

'हविष्य अन्नोंमें जौ मुख्य है, उसके बाद धानोंको कहा है। यदि हविष्य कोई भी प्राप्त न हो, तो उड़द, कोदों और सरसोंका कभी भी हविष्यरूपमें उपयोग न करे।'